

ईकार्ड— 2 इरिक्सन की मनोसामाजिक विकास की अवस्थाएँ—



परिचय



उद्देश्य



इरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धान्त



मनोसामाजिक अवस्थाओं की विशेषताएँ



मनोसामाजिक विकास की अवस्थाएँ

ईकाई— 2 इरिक्सन की मनोसामाजिक विकास की अवस्थाएँ—

1. परिचय—

अधिगमकर्ता की वृद्धि और विकास की पद्धति को स्पष्ट करने के लिए अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया। इन्हीं सिद्धान्तों में सामाजिक विकास के पक्ष में मनोसामाजिक सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ। मनोसामाजिक सिद्धान्त इरिक्सन द्वारा प्रतिपादित है इसमें आठ मनोसामाजिक अवस्थाओं के आधार पर व्यक्तित्व विकास की व्याख्या की गई है। “विकास” क्या है ? यह सम्प्रत्यय जान लेना आवश्यक है

2 विकास

विकास परिवर्तनों की श्रृंखला है, जो किसी व्यक्ति की भ्रूण अवस्था से परिपक्वता तक पहुँचने के दौरान होती है। अर्थात् विकास जीवन में होने वाले उन परिवर्तनों का योग है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को क्रमिक ढंग से परिपक्व बनाते हैं।

विकास की प्रक्रिया में प्रत्यागमन, वृद्धि और परिपक्वता सम्मिलित होते हैं। विकास के परिणाम स्वरूप नयी योग्यताओं का उदय सम्भव हो पाता है। विकास सदैव सामान्य से विषिष्ट की ओर चलता है। विकास कभी नहीं रुक सकता। यह जन्म से मृत्युपर्यन्त चलता है।

इरिक एरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धांत:-

परिचय— विकास के सिद्धान्तों में मनोसामाजिक सिद्धान्त का महत्वपूर्ण स्थान है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादक इरिक इरिक्सन हैं जिनका जन्म 1902 ई० में जर्मनी के फ्रैंकफर्ट में हुआ इरिक्सन ने अपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं के विस्तार के रूप में किया। उन्होंने अपने विचारों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन अपनी कुशल पुस्तकों में किया जैसे— 7

- चाइल्डहुड एण्ड सोसाइटी
- आइडेण्टिटी : युथ एण्ड काइसिस
- गान्धी की सच्चाई
- टॉय एण्ड रिजन
- एडल्टहुड

मनोविज्ञान के क्षेत्र में अहं मनोवैज्ञानिक के रूप में प्रसिद्ध है। इनके द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धांत फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत से भी काफी प्रभावित है तथापि इन्होंने अपने सिद्धांत में कुछ ऐसे कारकों को भी महत्व दिया है, जिनकी चर्चा फ्रायड ने नहीं की है। जैसे कि एरिक्सन ने मानवीय व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारकों की भूमिका को भी स्वीकार किया है। इसलिये इनके सिद्धांत को व्यक्तित्व के मनोसामाजिक सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है।

➤ मानव प्रकृति के संबंध में पूर्वकल्पनायें:-

प्रायः प्रत्येक मनोवैज्ञानिक ने मानव स्वभाव के संबंध में अपनी कुछ धारणाओं, मान्यताओं का प्रतिपादन किया है। अतः मानव प्रकृति के संबंध में एरिकसन की भी कतिपय (कुछ) पूर्वकल्पनायें अर्थात् मान्यतायें हैं। जिनसे हमें उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त को समझने में काफी हद तक सहायता मिलती है। तो आइये, जाने कि एरिकसन की मानव स्वभाव के संबंध में क्या-क्या धारणायें हैं? इनका विवेचन है-

1. एरिकसन ने मानवीय प्रकृति में तीन तत्वों को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना हैं, जो हैं-



2 एरिकसन ने मानव प्रकृति के कुछ अन्य पक्षों जैसे कि वस्तुनिष्ठता अग्रलक्षता निर्धार्यता ज्ञेयता विषम स्थिति को अपने सिद्धान्त में अन्य पहलुओं की अपेक्षा कम महत्व प्रदान किया है। ने अपना ध्यान मूल रूप से इस बात पर केन्द्रित किया है कि अहं का विकास किस प्रकार से होता है तथा इसके कार्य क्या-क्या हैं? अहं के विकास एवं कार्यों से उपाहं (id) तथा पराहं (Super ego) के विकास कार्यों के संबंध न के बराबर है। वस्तुतः के सिद्धान्त की मूल मान्यता यह है कि मानव मानवीय व्यक्तित्व कई अवस्थाओं से गुजरकर विकसित होता है और ये अवस्थायें शाश्वत एवं पहले से निश्चित होती हैं। इतना ही नहीं विकास की ये अवस्थायें विशिष्ट नियम द्वारा संचालित एवं नियंत्रित होती हैं जिसे पशुजात नियम (Epigenetic principle) कहते हैं।

➤ मनोसामाजिक अहं विकास की अवस्थाओं की विशेषतायें-

एरिकसन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'childhood and society, 1963' में मनोसामाजिक अहं विकास की 8 अवस्थाएँ बतायी है। एरिकसन के अनुसार विकास की प्रत्येक अवस्था होने का एक आदर्श समय है। प्रत्येक अवस्था क्रमशः एक के बाद एक आती है और व्यक्तित्व क्रमशः विकसित होता जाता है। के अनुसार व्यक्तित्व का यह विकास जैविक परिपक्वता तथा सामाजिक एवं ऐतिहासिक बलों में अन्तः क्रिया के परिणामस्वरूप होता है। इन मनोसामाजिक विकास की अवस्थाओं की कतिपय महत्त्वपूर्ण विशेषतायें हैं, जिनका विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है-

➤ प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था में एक 'संक्रान्ति' होती है अर्थात् जीवन का वह बिंदू (Turning point) जो उस अवस्था में जैविक परिपक्वता और सामाजिक माँग में अन्तःक्रिया के परिणाम स्वरूप प्राणी में उत्पन्न होता है।

➤ प्रत्येक मनोसामाजिक संकट धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों तत्वों से युक्त होते हैं। प्रत्येक अवस्था में जैविक परिपक्वता और सामाजिक माँग के कारण संघर्ष की स्थिति अवश्य ही उत्पन्न होती है यदि इस संघर्ष की स्थिति का समाधान संतोषजनक तरीके से कर लिया जाता है तो व्यक्तित्व विकास अवरुद्ध होने की सम्भावना में कमी आती है। सही तरह से व्यक्तित्व विकास के लिए धनात्मक तत्व का ऋणात्मक तत्व की तुलना में अनुकूल अनुपात होना आवश्यक है।

- प्रत्येक मनोसामाजिक संक्रान्ति में सकारात्मक (धनात्म) तथा नकारात्मक (ऋणात्मक) तत्व दोनों ही विद्यमान होते हैं। प्रत्येक अवस्था में जैविक परिपक्वता एवं नयी-नयी सामाजिक माँगों के कारण द्वन्द्व होना स्वाभाविक ही है यदि व्यक्ति इस द्वन्द्व से बाहर निकल आता है तो उसका व्यक्तित्व स्वस्थ रूप से विकसित होता जाता है और इसके विपरीत यदि वह इस समस्या का समाधान नहीं कर पाता है तो व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाता है तथा व्यक्तित्व संबंधी कई विकार उत्पन्न हो जाते हैं।
- व्यक्ति को प्रत्येक मनोसामाजिक विकास की अवस्था की संक्रान्ति का समाधान करना चाहिये क्योंकि ऐसा न होने पर अगली अवस्था में व्यक्ति के व्यक्तित्व का सुनियोजित एवं उत्तम तरीके से विकास नहीं हो पाता है। जब व्यक्ति संक्रान्ति का समाधान कर लेता है तो उसमें एक विशिष्ट मनोसामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है। इस शक्ति को ने सदाचार कहा है।
- प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था में उत्पन्न संकट ;क्षोभ का निराकरण आवश्यक है। ऐसा न होने पर अगली अवस्था में अपेक्षित विकास की संभावना कम हो जाती है।
- मनोसामाजिक विकास की प्रत्येक अवस्था में तीन आर होते हैं हैं जिन्हें तीन आर (Eriprson three R's) की संज्ञा दी गई है। ये तीन आर (R) हैं-

अ. कर्मकांडता (Ritualization)

ब. कर्मकांड (Ritual)

स. कर्मकांडवाद (Ritualism)

1. **कर्मकांडता (Ritualization)**- एरिकसन के अनुसार कर्मकांडता का अर्थ है- “ समाज के व्यक्तियों के साथ सांस्कृतिक रूप से स्वीकार किये गये तरीके से व्यवहार या अन्तः क्रिया करना।”
2. **कर्मकांड (Ritual)** - कर्मकांड का अर्थ है-” वयस्क लोगों के समूह द्वारा आवृत्ति स्वरूप की मुख्य घटनाओं को दिखाने के लिये किये गये कार्य।”
3. **कर्मकांडवाद (Ritualism)** - कर्मकांडता में जो विकार उत्पन्न होता है उसे एरिकसन ने कर्मकांडवाद का नाम दिया है। इसमें प्राणी स्वयं अपने ऊपर ध्यान केन्द्रित करता है।
5. प्रत्येक मनोसामाजिक अवस्था का निर्माण उससे पूर्व की स्थिति में हुये विकासों से संबंध रखता है। इस प्रकार, आपने जाना कि मनोसामाजिक विकास की अवस्थाओं की कुछ महत्वपूर्ण विशेषतायें हैं, जिनको समझने के बाद हम एरिकसन ने व्यक्तित्व के विकास की जो अवस्थायें बतायी हैं, उनको आसानी से समझ सकते हैं।

➤ **मनोसामाजिक विकास की अवस्थाएँ:-**

जैसा कि आप जानते हैं कि प्रत्येक मनोवैज्ञानिक ने अपने-अपने सिद्धान्त में व्यक्तित्व की विकास की कुछ अवस्थाएँ बतायी हैं, जो क्रमशः एक के बाद एक आती हैं और उनसे होकर मानवीय व्यक्तित्व क्रमशः विकसित होता जाता है। इसी क्रम में एरिकसन ने भी मनोसामाजिक विकास की आठ अवस्थाएँ बतायी हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न प्रकार से मानवीय व्यक्तित्व विकसित होता है। इन अवस्थाओं का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है-

मनोसामाजिक विकास की अवस्थायें:-

1. शौशवावस्था: विश्वास बनाम अविश्वास

2. प्रारंभिक बाल्यावस्था: स्वतंत्रता बनाम लज्जा शीलता

3. खेल अवस्था: पहलशक्ति बनाम दोषिता

4. स्कूल अवस्था: परिश्रम बनाम हीनता

5. किशोरावस्था : अहं पहचान बनाम भूमिका संभ्रान्ति

6. तरुण वयास्कावस्था: घनिष्ठ बनाम विकृति

7. मध्य वयास्कावस्था जननात्मका बनाम स्थिरता

8. परिपक्वता: अहं सम्पूर्णता बनाम निराशा



1. शौशवावस्था: विश्वास बनाम अविश्वास (0 से 1 ½ वर्ष) :-

फ्रायड के मनोलैंगिक विकास की मुखावस्था से समानता रखने वाली यह अवस्था जन्म से लेकर 1½ साल उम्र तक होती है।

इस अवस्था में जिस सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास होता है। वह दूसरों तथा स्वयं में विश्वास एवं आस्था की भावना है। इस भावना का विकास माता-पिता द्वारा बच्चों की सही देख-रेख के परिणामस्वरूप होता है। अच्छी देखभाल ही दूसरों में विश्वास की भावना को बढ़ाती है, और उसमें यह भी विश्वास उत्पन्न करती है कि उसके शारीरिक अंग जैविक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सक्षम हैं। इस प्रकार की भावना के विकास से बच्चों में एक स्वस्थ व्यक्तित्व के निर्माण की आधारशिला तैयार हो जाती है।

यदि किन्हीं कारणों से माता-पिता बच्चे की उत्तम देखभाल करने में समर्थ नहीं होते हैं तो बच्चे में अविश्वास की भावना विकसित हो जाती है जिससे मनोसामाजिक विकास की अग्रिम अवस्थाओं में स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण अवरुद्ध हो जाता है। और वह दूसरों के प्रति डर, संदेह, आशंकाएँ जैसी अनुभूतियाँ विकसित कर लेता है।

2. प्रारंभिक बाल्यावस्था: स्वतंत्रता बनाम लज्जा शीलता :-

इस अवस्था का समय 2 वर्ष से 3 वर्ष तक होता है। यह अवस्था फ्रायड के मनोलैंगिक विकास की “गुदा अवस्था” के समान है। इस अवस्था में स्वतंत्रता एवं आत्मनियंत्रण आदि गुणों का विकास होता है। इससे पूर्व की अवस्था में बच्चे पूर्णतः दूसरों पर निर्भर होते हैं, किन्तु इस अवस्था में उनमें न्यूरोपेथीय परिपक्वता, सामाजिक विभेद तथा शाब्दिक अभिव्यक्ति आदि की क्षमता विकसित हो जाती है और वह वातावरण को

स्वतंत्रता से अन्वेषण करना प्रारंभ कर देता है। इस अवस्था में बच्चे अधिक से अधिक काम स्वयं करना चाहते हैं इसे “स्वायत्तता” कहा जाता है। यहाँ स्वायत्तता का अर्थ है स्वतंत्रता, किन्तु अप्रतिबंधित स्वतंत्रता नहीं, बल्कि माता-पिता अपने नियंत्रण में बच्चों को कार्य करने की स्वतन्त्रता दें।

जब माता-पिता बच्चों से ऐसी उम्मीद रखते हैं जो उनकी क्षमता से बाहर है या फिर उन्हें छोटा समझकर कार्य नहीं करने देते हैं, तो बच्चों में लज्जाशीलता की भावना विकसित हो जाती है। जिससे अन्य मनोसामाजिक मनोवृत्तियाँ विकसित हो जाती हैं जैसे— स्वयं पर संदेह, व्यर्थता, शक्तिहीनता जब बालक स्वायत्तता बनाम लज्जाशीलता के संघर्ष का समाधान कर लेता है, तो उसमें एक मनोसामाजिक शक्ति की उत्पत्ति होती है जो “इच्छा शक्ति” से मिलती जुलती है। इस अवस्था में बच्चों को दूसरों का कार्य करने में आनन्द आता है वे नयी जिम्मेदारियाँ निभाने में आनन्दित होते हैं। इस शक्ति के द्वारा बच्चों में अपनी रुचि के अनुसार कार्य करने तथा आत्म संयम की क्षमता उत्पन्न होती है।

3. खेल अवस्था: पहलशक्ति बनाम दोषिता :-

इस अवस्था का समय 4 साल की आयु से 6 साल की आयु तक होता है। यह अवस्था फ्रायड की मनोलैंगिक विकास की “लिंग प्रधान अवस्था” से मिलती जुलती है। इस अवस्था तक बच्चों में भाषा और पेशीय कौशलों का विकास हो जाता है। अतः वे बाहर अन्य बच्चों के साथ सामाजिक खेलों में भाग लेने में रुचि लेते हैं।

यह ऐसी पहली मनोसामाजिक अवस्था है जहाँ बच्चों को पहली बार यह अनुभूति होती है कि उनके जीवन का भी एक उद्देश्य है। जब इस अवस्था में माता-पिता द्वारा सामाजिक कार्यों में हाथ बटाने से रोका जाता है या किसी ऐसी इच्छा पर शारीरिक दण्ड दिया जाता है तो बच्चों में अपराध भावना उत्पन्न हो जाती है। और वे बच्चे कभी स्वयं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पाते और उनमें किसी लक्ष्य के प्रति निरंतर प्रयत्न करने की क्षमता समाप्त हो जाती है।

4. स्कूल अवस्था: परिश्रम बनाम हीनता :-

मनोसामाजिक विकास की यह चतुर्थ अवस्था जो 6 साल की आयु से प्रारंभ होकर लगभग 11—12 साल की आयु तक की होती है। यह फ़ायड के मनोलैंगिक विकास की अव्यक्त अवस्था के समान है। इस अवस्था में बालक औपचारिक शिक्षा के माध्यम से संस्कृति के प्रारंभिक कौषलों को सीखता है। अतः इस अवस्था को स्कूल अवस्था भी कहा जाता है। जब बच्चे प्रारंभिक कौषलों को सफलतापूर्वक सीख लेते हैं। तो उनमें परिश्रम का भाव विकसित होता है, किन्तु यदि किसी कारणवश वे कौषलों का अर्जन करने में असफल होते हैं या उन्हें स्वयं के कौषल पर संदेह हो जाता है तो उनमें हीनता/असामर्थ्यता की भावना आ जाती है। इस भावना के विकसित होने से उसे स्वयं की क्षमता पर विश्वास नहीं रहता है।

जब बालक परिश्रम बनाम हीनता के द्वन्द्व का सफल समाधान कर लेता है। तो उसमें “सामर्थ्यता” नामक मनोसामाजिक शक्ति उत्पन्न होती है। यह शारीरिक और मानसिक क्षमताओं को प्रयोग करने में सहायक होती है।

5. किशोरावस्था : अहं पहचान बनाम भूमिका संभ्रान्ति :-

12 वर्ष की आयु से लेकर 19 या 20 वर्ष तक माने जाने वाली यह अवस्था एक महत्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में सकारात्मक पक्ष के रूप में अहं पहचान और नकारात्मक पक्ष के रूप में भूमिका भ्रान्ति या पहचान संकट का विकास होता है इस अवस्था में किशोर पूर्व में सीखे गये ज्ञान को इस तरह संगठित करने की कोशिश करते हैं कि उनकी पहचान बनी रहे। अहं पहचान के समुचित विकास के लिए आवश्यक है कि किशोरों में वयस्क यौन भूमिकाओं का विकास हुआ हो किन्तु यदि किशोर बाल्यावस्था की अनुभूतियों या वर्तमान प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियों से घिर जाते हैं तो परिणाम यह होता है कि

उनका आत्म प्रत्यक्षण दूषित हो जाता है। इससे उनमें भूमिका संभ्रम की भावना उत्पन्न हो जाती है। इस स्थिति में किशोर दिग्भ्रमित हो जाते हैं और आगे की शिक्षा को जारी रखने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। जिससे उनमें उद्देश्यहीनता व्यक्तिगत विघटन की भावना प्रधान हो जाती है। कभी-कभी किशोरों में ऋणात्मक पहचान भी विकसित हो जाती है।

6. तरुण वयास्कावस्था: घनिष्ठ बनाम विकृति :-

20 वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर 30 वर्ष की आयु तक इस अवस्था का समय है। इस अवस्था में व्यक्ति जीवन प्रारंभ करता है। यहाँ युवक किसी न किसी व्यवसाय का चयन करता है, और अपना स्वतंत्र जीविकोपार्जन प्रारंभ कर देता है। इस अवस्था में व्यक्ति सही अर्थों में दूसरों के साथ सामाजिक लैंगिक, घनिष्ठता बनाने के लिए तैयार रहता है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने परिवार और अपने संबंधियों के साथ घनिष्ठ संबंध विकसित करता है, और स्वयं के साथ भी घनिष्ठ संबंध विकसित कर एक स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास करता है। इस अवस्था में यदि दूसरों के साथ कुछ कारणों से घनिष्ठ वैयक्तिक संबंध विकसित नहीं कर पाता है और स्वयं में ही खोया रहता है तो इसे अलगाव कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति यदि अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध बनाते भी हैं। तो वह खोखले व सतही होते हैं। ऐसे व्यक्तियों में कार्य एवं व्यवसाय के प्रति नीरसता की मनोवृत्ति जाग्रत होती है। जब “अलगाव” की भावना की मात्रा बढ़ जाती है तो व्यक्ति में गैर-सामाजिक व्यवहार प्रबल होता है। जब व्यक्ति घनिष्ठता बनाम अलगाव से उत्पन्न संघर्ष का समाधान सफलता पूर्वक कर लेता है तो “स्नेह” नामक मनोसामाजिक शक्ति की उत्पत्ति होती है जो किसी संबंध को बनाये रखने में समर्पण की क्षमता से सम्बद्ध है। इसके माध्यम से व्यक्ति दूसरों के प्रति आदर, उत्तरदायित्व, आदि मनोवृत्ति दिखलाता है।

7. मध्य वयास्कावस्था जननात्मक बनाम स्थिरता :-

यह अवस्था 30 वर्ष की आयु से 65 वर्ष की आयु तक की मानी गयी है। जननात्मकता का भाव इस अवस्था में सकारात्मक दृष्टिकोण के रूप में उत्पन्न होता है। जननात्मकता से तात्पर्य है कि व्यक्ति द्वारा अगली पीढ़ी के लोगों के कल्याण और साथ ही साथ उस समाज के जिसमें वे लोग रहेंगे को उन्नत बनाने की चिन्ता”।

जब व्यक्ति में जननात्मकता की भावना विकसित नहीं होती तो स्थिरता की अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति की वैयक्तिक आवश्यकताओं एवं सुख सुविधा सर्वोपरि होती है। ऐसे व्यक्ति को किसी दूसरे की चिंता तक नहीं होती। सिर्फ स्वयं की वैयक्तिक सुख सुविधा के लिए परेषान रहते हैं। इस अवस्था में मनोसामाजिक संकट का समाधान होने पर एक शक्ति उत्पन्न होती है। जिसे इरिक्सन ने 'देखभाल' कहा है। इससे कल्याण की भावना का विकास होता है।

8. परिपक्वता: अहं सम्पूर्णता बनाम निराशा:-

मनोसामाजिक विकास की यह अन्तिम अवस्था है जो 65 वर्ष की आयु से मृत्यु तक होती है। इस अवस्था को बुढ़ापे की अवस्था कहा गया है। जिसमें व्यक्ति को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जैसे प्रधानरूप से गिरते हुए शारीरिक स्वास्थ्य और शक्ति के साथ समायोजन, अवकाश प्राप्ति के बाद उत्पन्न आय में कमी, अपने समकालीन की मृत्यु, अपने हम उम्र समूह के साथ संबंध आदि।

इस अवस्था में व्यक्ति का ध्यान भविष्य से हटकर बीते दिनों पर होता है। विशेषकर जिसमें उसने सफलता या असफलता अर्जित की है। इरिक्सन का मत है कि इस अवस्था में कोई मनोसामाजिक संकट उत्पन्न नहीं होता। व्यक्ति स्वयं की पिछली मनोसामाजिक अवस्थाओं का मूल्यांकन करता है। जिससे उसमें अहंपूर्णता का भाव उत्पन्न होता है। इस अवस्था में व्यक्ति को मृत्यु से भय नहीं लगता, क्योंकि वह स्वयं का अस्तित्व जारी समझता है। इस अवस्था में व्यक्ति को बुद्धिमत्ता का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। इस अवस्था की प्रमुख मनोसामाजिक शक्ति "परिपक्वता" है। कोई-कोई व्यक्ति अपनी बीती मनोसामाजिक अवस्थाओं में उत्पन्न असफलताओं से चिंतित रहते हैं। ऐसे लोग अपनी जिन्दगी को अपूरित, इच्छाओं, आवश्यकताओं का एक ढेर मानते हैं इससे उनमें निराशा का भाव उत्पन्न होता है। वे स्वयं को निर्बल और असहाय समझने लगते हैं। यदि ऐसी भावना तीव्र हुई तो उसमें मानसिक विषाद भी उत्पन्न हो जाता है।

1. सिद्धान्त के गुण और दोष :-

सिद्धान्त के गुण :-

- ❖ इस सिद्धान्त में आषावादिता को अपनाया गया है। एक अवस्था में असफलता मिलने पर भी अगली अवस्था में सफलता मिल सकती है।
- ❖ व्यक्तित्व विकास की व्याख्या हेतु समाज एवं स्वयं व्यक्ति की भूमिकाओं पर बल डाला गया है।
- ❖ इस सिद्धान्त में सम्पूर्ण जीवन अवधि के आधार पर व्यक्तित्व विकास की व्याख्या की गई है।
- ❖ इस सिद्धान्त में किशोरावस्था को महत्वपूर्ण माना गया है।

सिद्धान्त के दोष :-

- ❖ कुछ विद्वानों के अनुसार इरिकसन के सिद्धान्त में केवल फ्रायड के सिद्धान्त का सरलीकरण हुआ है और कुछ नहीं।
- ❖ इस सिद्धान्त को प्रयोगात्मक समर्थन प्राप्त नहीं है। सभी सम्प्रत्यय व्यक्तिगत प्रेक्षणों पर आधारित हैं। अतः वे आत्मनिष्ठ हैं।

2. ईकाई सारांश : स्मरणीय बिंदु –

- विकास परिवर्तनों की श्रृंखला है जो किसी व्यक्ति की भ्रूण अवस्था से परिपक्वता तक पहुँचने के दौरान होती है।
- सामाजिक विकास सीखने की वह प्रक्रिया है। जो समूह के स्तर परम्पराओं तथा रीति रिवाजों के अनुकूल स्वयं को ढालने तथा एकता, मेलजोल और पारस्परिक सहयोग की भावना भरने में सहायक होती है।
- पैरावावस्था में अपरिपक्व व सीमित अहं केन्द्रित सामाजिक विकास होता है।
- बाल्यावस्था में कुछ क्षेत्र विस्तृत हो जाता है और परिपक्वता की मात्रा भी अधिक होने से पौषवकाल की अपेक्षा सुदृढ़ सामाजिक विकास होता है।
- किशोरावस्था में सर्वाधिक, पुष्ट और परिपक्व सामाजिक विकास होता है। इस अवस्था के अन्त तक बालक पूर्ण सामाजिक परिपक्व हो जाता है।